



**पुरुषार्थमूर्ति पूज्य श्री निहालचंद्र सोगानीजी द्वारा  
साधर्मीओं को लिखे हुए आध्यात्मिक पत्र**

(२१)

कलकत्ता  
२९-६-१९५९

**आत्मार्थी...प्रत्ये निहालचंद्र का धर्मस्नेह।**

आपका कार्ड अजमेर से भिजवाया हुआ मुझे यहाँ मिला। मैं करीब १५ दिन से कलकत्ता ही हूँ। व्यापार संबंधी कार्य से आया हुआ हूँ।

श्रीगुरुदेव को मेरा अत्यंत भक्तिपूर्वक नमस्कार कहना और सर्व भाईयों को धर्मस्नेह। मुझे अत्यंत खेद होता है कि मेरा बजाय वहाँ रहने के इधर-उधर ही रहना हो रहा है। अभी करीब १५ दिवस के और यहाँ ही हूँ और शायद अधिकतर यहाँ ही रहना होगा। चौमासे में १ माह के करीब वहाँ रहने की अवश्य पूर्ण भावना है।

‘स्वामीकार्तिकेयानुप्रेक्षा’ की प्रतियाँ, मैं अजमेर जाने से भेजने में समर्थ हो सकूँगा। यहाँ कलकत्ता में सोनगढ़ से संबंधित कौन भाई रहा करते हैं, यदि हो सके तो पता भेजना। और यहाँ योग्य कार्य लिखना।

धर्मस्नेही  
निहालचन्द्र



(२२)

कलकत्ता  
२७-७-१९६१



श्री सद्गुरुदेवाय नमः

**आत्मार्थी...**

पूज्य गुरुदेवश्री सुख-शांति में विराजते होंगे। साधर्मीजन समवसरण जैसे वातावरण में उनकी दिव्यध्वनि जैसी अमृतवाणी का लाभ लेकर अनंतसुख प्राप्त करें, यह ही भावना है।

आपका पत्र ता.१५-७ का मिला। इसके पहले तो कोई नहीं मिला था। हीन पुण्ययोग होने से, सोनगढ़ प्रति के विकल्प की प्रधानता नहीं होने से अभी तक मैं उधर नहीं आ सका, इसका अत्यंत खेद है। गए तीन माह से कुछ ऐसे योग हुए, प्रथम मेरे पिताश्री का स्वर्गवास होना, द्वयम् एक माह पहले मेरे स्वयं के शरीर के छूटने जैसा योग हो गया था। कुछ व्यक्तियोंने मेरे पास एक बैग देखकर, उसमें रकम

(अनुसंधान पृष्ठ सं.१५ पर...)

# स्वानुभूतिप्रकाश

वीर संवत्-२५४५: अंक-२४८, वर्ष-२३, जुलाई-२०१८

आषाढ शुक्ल ८, रविवार, दि. २६-६-१९६६, योगसार पर  
पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी का प्रवचन, गाथा-५२-५३, प्रवचन-१८

५२ - 'जगत प्रपंचों में उलझा प्राणी  
आत्मा को नहीं पहचानता।' देखो यह आया।  
धंधड़ पडियउ सयल जगि, णवि अप्पा हु मुणंति।  
तहिं कारणि ए जीव फुडु ण हु णिव्वाणु  
लहंति।।५२।।

'जगत के सब प्राणी अपने-अपने धन्धों  
में-व्यवहार में फँसे हुए हैं...' कोई कमाना, कोई  
खाना, कोई पीना, कोई भोग, समझ में आया? दुनिया  
में प्रसिद्धि में पड़ना-कुर्सी पर बैठना, प्रतिष्ठा पाना  
सबके आगे सबसे बड़ा हुआ दिखना इस धन्धे में  
पड़े हुए हैं। त्यागी नाम धरानेवाले भी पुण्य-दया,  
दान, व्रत के व्यवहार-धन्धे में पड़े हुए हैं। समझ  
में आया? उन्हें फुर्सत नहीं मिलती, यह मन्दिर बनाना  
है और ऐसा कराना है, यह होली, यह सब राग  
का धन्धा है। समझ में आया?

मुमुक्षु :- धन्धा तो छोड़ दिया है।

उत्तर :- कहाँ धन्धा छोड़ा? कौन-सा धन्धा  
परन्तु? जिसे यह बाहर की... यह कहते हैं। 'धंधड़  
पडियउ सयल जगि' पूरा जगत व्यापार-धन्धे (में  
पड़ा है), राग के धन्धे में पड़ा है फिर कोई अशुभराग  
का धन्धा कोई शुभराग का धन्धा (करता है)। आत्मा  
कौन है? उसे देखने और विचारने के लिए चौबीस  
घण्टे फुरसत में नहीं होता। यह खाना है और यह  
पीना है। यह नहीं खाना और यह धन्धा, यह दया

पालन की और इसकी भक्ति की। मैंने उपदेश दिया  
उसमें समझे। गया, मर गया-ऐसे का ऐसा कहते हैं।  
शुभराग के धन्धे में भगवान को खोकर बैठा।

मुमुक्षु :- विस्तार विशाल है।

उत्तर :- यह विशाल ही है। योगसार है या  
नहीं? क्या (कहा)? आत्मा ज्ञानानन्दस्वभाव में जुड़ान  
होवे, उसका नाम योग है; इसके अतिरिक्त रागादि  
में जुड़ान हो वह सब (आत्म) योग से विरुद्ध योग  
है। कहो, इसमें समझ में आया? साधु होकर या  
त्यागी होकर फुरसत में कहाँ (पड़ता है)? कितने  
पत्र, कितने कागज, कितने समाचार, कितने तार...  
उसका यह धन्धा... यह तो सब पाप का धन्धा है।

मुमुक्षु :- इतना परिग्रह लौकिक में भी  
नहीं होता।

उत्तर :- इतने पत्र भी नहीं होते, मलूकचन्दभाई!  
आहाहा..! सबेरे से शाम एक तो व्यक्ति रखा हो,  
इतने पत्र आये? कितने आये? उसे लिखो, यह पत्र  
इसे लिखो... तेरा धन्धा ही यह है। भगवान कहाँ  
गया तेरा? कहो, समझ में आया?

'जगत् के सभी प्राणी अपने-अपने धन्धे  
में-व्यवहार में फँसे हुए हैं, तल्लीन हैं, इसलिए  
निश्चय से आत्मा को नहीं मानते हैं।' देखो,  
वे आत्मा को मानते ही नहीं। जो पुण्य और पाप  
के राग के प्रेम में फँसे हैं, उन्हें आत्मा क्या है-

उसका प्रेम है ही नहीं। समझ में आया? जगत् के धन्धे वाला अशुभभाव के पाप में-यह करूँ और यह कमाया, लड़के हुए, और विवाह किया, यह हुआ कुछ बड़े... वे वहाँ पड़े हैं। त्यागी नाम धरानेवाले... नाम धरानेवाले, हाँ! वे भी शुभभाव के राग में कदाचित् यह किया और यह लिया, यह दिया, यह धूल की उसमें पड़े हैं, वे सब फँसे हुए हैं। 'सांगो कहे सलवाणा, कई चढ्या कई पाला' समझ में आया? जेल में पड़े हैं, जेल में।

एक ऊँट को जेल में डाला और एक सेठ को डाला। वह सेठ कहता है (कि) मैं ऊँट के ऊपर बैठा हूँ परन्तु बैठा है जेल में न? समझ में आया? इसी प्रकार वस्त्र बदलकर नग्न होकर बैठे, साधु भी किसका नग्न? वह क्रिया तो जड़ की है और अन्दर में कोई दया, दान का परिणाम हो तो विकार है, वहीं फँसा है। भगवान आत्मा राग की क्रिया, देहरहित है-ऐसे आत्मा का प्रेम करने का समय नहीं निकालता। हरिप्रसादजी! योगीन्द्रदेव ऐसा कहते हैं। आहाहा..!

यह सब पता है। तुम नाचनेवाले और (हम) देखनेवाले। नाचनेवाले को मेहनत पड़ती है, उस देखनेवाले को मेहनत क्या पड़े? हैं? ऐसे नाचता है, देख लिया, हो गया, जाओ! ए...निहालभाई! भाषा कैसी ली है, देखो न!

सकल जगत्-ऐसा लिया है न? 'धंधड़ पडियउ सयल जगि' जग शब्द में सब-एक-एक लिया, हाँ! हमें धर्मोपदेश करना, हमें दूसरों को सुनाना है, हमें समझाना है, यह भी पूरा राग का धन्धा है। धूल में भी निर्जरा नहीं, निर्जरा कहाँ थी? प्रभावना किसकी? धूल में... राग होता है, उसमें प्रभावना

कहाँ आयी? हैं?

मुमुक्षु :- दिशा बदली।

उत्तर :- किसकी दिशा बदली? वही की वही दिशा है, पर की और पर की दिशा है।

सकल जगत्, लिया है। देखो! हैं? 'णवि अप्पा हु मुणति' देखो, इसमें आत्मा को देखने-जानने के लिए निवृत्त नहीं होता (आत्मा तो) उत्पन्न निर्विकल्प तत्त्व है। निर्विकल्प तत्त्व... जिसमें एक विकल्प शास्त्र सुनूँ और शास्त्र दूसरे को कहूँ-इस विकल्प का जिसमें अवकाश नहीं है। आहाहा..! आहाहा..! यह

वीतरागमार्ग है। सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ परमात्मा अन्दर समझकर, अन्दर में समा गये। समझ में आया?

कहते हैं कि जिसे आत्मा का-अन्तर ज्ञानानन्द का प्रेम नहीं है, वह कोई अशुभ के धन्धे में फँसे, कोई शुभराग के व्यवहार-धन्धे में फँसे हैं, यह व्यवहार राग, यह सब संसार ही है। आहाहा..! समझ में आया? अपना

नाम रखने के लिए नये-नये पुस्तक बनाना.. हमने हमारी नयी पुस्तक बनायी है, हमने इतनी पुस्तकें बनायी हैं... होली एक ही है। भाई! और फिर कोई सेठ आवे, उससे कहे यह पुस्तक पाँच ले जाओ, पाँच-पाँच ले जाओ, एक रखना और दूसरे प्रभावना करना-यही धन्धा? वे लड़के के राग का धन्धा, तेरे यह धन्धा। समझ में आया?

यहाँ तो कहते हैं, भाई! प्रभु! तू अन्तर्निर्विकल्प-विकल्प के शुभराग से रहित चीज है न! उसका तुझे प्रेम नहीं है, उससे विरुद्ध राग के प्रेम के धन्धे में फँसा है (उसमें) भगवान तू भूल गया है। आहाहा..! समझ में आया, कितने ही तो धन्धे के लिए पुस्तकें भी रखते हैं, हमारे द्वारा बनायी हुई इतनी पुस्तकें



हैं। एक-एक सेट ले जा, एक-एक सेट ले जाओ, तुझे यही धन्धा है? वह लेनेवाला ऐसा कहे, ओहो..! महाराज ने बहुत प्रभावना की है।

भगवान ज्ञानस्वरूप में अन्तर एकाग्र होना, वह ज्ञान की प्रभावना है। यह राग है, वह तो वास्तव में पुण्य-बन्ध का कारण है। उसके प्रेम में फँसने से अन्दर भगवान आत्मा विस्मृत हो जाता है। यह धन्धा छोड़-ऐसा कहते हैं। समझ में आया? यह व्यवहार है, यह धन्धा खोटा है-ऐसा यहाँ कहते हैं, वह कहते हैं।

**‘यही कारण है जिससे जीव निर्वाण प्राप्त नहीं करते...’** देखो इस व्यवहार के पुण्य की क्रियाकाण्ड में फँसे... स्वयं करते हैं, दूसरों से कराते हैं, करते हुए को अनुमोदना देते हैं। ओहोहो..! बहुत अच्छा किया। पाँच लाख-दस लाख खर्च करके एक मन्दिर बनाया हो (तो कहे) तीर्थकर गोत्र बाँधोगे... धूल में भी नहीं बाँधेगा, सुन न! पैसा खर्च किया उसमें राग मन्द किया हो तो कदाचित् पुण्य होगा। उस पुण्य में तीर्थकर गोत्र नहीं बाँधेगा, उस पुण्य से लाभ माने वह तो मिथ्यादृष्टि जीव है। समझ में आया? आहाहा..! क्या है? पुस्तक है या नहीं? यह आया न?

**‘सकल संसार, शरीर में प्राप्त इन्द्रियों के विषयों के तथा भूख-प्यास के रोग...’** उसमें पड़े हैं। यह तो स्थूल बात करते हैं। उसे कोई परोपकारी गुरु मिलता है, कहते हैं। **‘सुनाना चाहता है, तो उसकी तरफ ध्यान नहीं देता...’** ध्यान नहीं देता, यह तो सब निश्चय की बातें करते हैं, निश्चय की बातें करते हैं (ऐसा करके) निकाल देता है। निश्चय अर्थात् सच्ची, व्यवहार अर्थात् आरोपित-खोटी... सुन न! यह तो निश्चय की बात करते हैं, लो! आत्मा ऐसा और आत्मा ऐसा, आत्मा ऐसा... कुछ करना नहीं? परन्तु क्या करना? अन्दर पहचान करके स्थिर होना, यह करना है। आत्मा में ज्ञान और श्रद्धा करके अन्दर स्थिर होना, यह करना है। दूसरा करना क्या है? आहाहा..!

कहते हैं कि **‘मनरहित पंचेन्द्रिय को हित-अहित का विचार करने की शक्ति नहीं है।’** तुझे कुछ शक्ति मिली तो तू पर में घुस गया। समझ में आया? नारकी जीवों का धन्धा मार खाना और दूसरों को मारना है। यह धन्धे की व्याख्या की। **‘मान कषाय की तीव्रता से मनुष्यों को अपना प्रसिद्धि करने की तीव्र इच्छा (रहती है)।’** मान-कषाय के लिए तीव्र इच्छा-मान दो, अभिनन्द दो, हमारा नाम रखो, पाँच लाख का मकान, बनाकर हमारा नाम रखो... नाम रखना है न? भटकने का... नाम खोना नहीं है न?

मुमुक्षु :- दूसरों को दान करने की प्रेरणा मिलती है।

उत्तर :- किसकी प्रेम मिलता होगा, तुझे मान चाहिए, उसमें प्रेरणा कहाँ रही? समझ में आया? कोई धनादिक का संग्रह करता है-ऐसी बात है।

फिर आत्मानुशासन की थोड़ी बात करते हैं। **‘बालवय में अंग ही पूरे नहीं बनते तब अज्ञानी होकर अपने हित-अहित का विचार नहीं कर सकता है।’** है न? **‘जवानी में काम से अन्धा होकर स्त्रीरूपी वृक्ष से भरे वन में भटकता रहता है। प्रौढ़ावस्था में तृष्णा की वृद्धि करके अज्ञानीप्राणी खेती आदि कार्यों द्वारा धन कमाने में कष्ट पाया करता है।’** और बाहर त्यागी होवे तो रागादि की क्रिया में पड़ता है। सब एक ही प्रकार का धन्धा है। **‘इतने में बढ़ापा आ जाता है, तब अधमरा हो जाता है। भला भाई! हम मनुष्य जन्म को सफल करने के लिए निर्मल धर्म कहाँ करते हैं?’** अब इसे धर्म करने का अवसर कहाँ? वह समय तो गँवा दिया। टोडरमलजी कहते हैं न! एक तो वास्तव में समय आया, तब व्यवहारधर्ममें इससे समय गँवाया। व्यवहारधर्म अर्थात् राग और पुण्य, दया और दान, इसमें गँवाया; (आत्मा का) निश्चय करने का, अनुभव का समय तो चला गया। समझ में आया? भाई! अद्भुत यह।

अब, ५३-शास्त्रपाठी... देखो! इसमें लिखा है, हाँ! गुरु से सुनता है परन्तु समझे नहीं तो शून्य है, कहते हैं। 'आत्मज्ञान बिना शास्त्रपाठ निष्फल है' लो! आया अब। यह तेरा शास्त्र पढ़ परन्तु यह आत्मा शास्त्र के पठन के विकल्प से भिन्न है, ऐसे सम्यक् के अनुभव बिना तेरे शास्त्र का पठन भी रण में चिल्लाने जैसा है। आहाहा..! बहुत परन्तु यह तो किसी का सब निकाल देते हैं। छिलके तो निकाल ही डाले न!

**सत्थ पढंतह ते वि जड, अप्पा जेण मुणंति।  
तहिं कारणि ए जीव फुड, ण हु णिव्वाणु  
लहंति।।५३।।**

देखा! जड़ कहा, जड़। 'शास्त्रों को पढ़ते हुए भी जो आत्मा को नहीं पहचानते...' शास्त्र-पठन, यह किया और यह किया और यह किया... यह तो सब विकल्प हैं, यह तो राग है। शास्त्र का पठन तो परलक्ष्यी ज्ञान है।

मुमुक्षु :- परन्तु शास्त्र में सातवें गुणस्थान में अनुभव लिखा है।

उत्तर :- धूल में भी नहीं लिखा उसमें। शास्त्र में लिखा है कि चौथे गुणस्थान में निर्विकल्प अनुभव होता है। समझ में आया? आत्मा में चौथे गुणस्थान में स्वरूपाचरण दशा प्रगट होती है। आत्मा में चौथे गुणस्थान में अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद आता है- ऐसा भगवानने कहा है। आठवें में कहीं नहीं लिखा है। उलटे (अर्थ) निकालते हैं।

'सत्थ पढंतह' कहा न? देखो न! 'कितने ही विद्वान अथवा स्वाध्याय करनेवाले व्याकरण, न्याय, काव्य, वैद्यत्व, ज्योतिष, धर्मशास्त्र आदि अनेक विषय के शास्त्र जानते हैं परन्तु शुद्धनिश्चयनय के विषय ऊपर लक्ष्य नहीं देते हैं।' लो, भगवान आत्मा शुद्ध चिदानन्द की मूर्ति परमानन्द, विकल्प और राग से रहित है; उस पर वे दृष्टि नहीं देते हैं, पुरुषार्थ नहीं करते। आहाहा..! देखो! अन्दर धर्म शास्त्र लिखा है, हाँ! आत्मज्ञान से बाहर रहते हैं, देखा! अध्यात्मज्ञान से बाहर रहते

हैं। अध्यात्मज्ञान का पता नहीं पड़ता। उसका यह है और व्याकरण ऐसा होता है, इसका शब्दकोश ऐसा होता है, इसकी यह धातु होती है और यह धातु होती है... तेरी चैतन्य धातु कैसी है? यह तो निर्णय कर। भाई! अरे.. अरे..! भारी झटके हैं हाँ! यह बहिनें, नहीं? दाने, फटकती है दाने? सूपड़ में फटकती हैं। फिर नीचे मारती हैं गब्बोई, वे जरा छिलके (होते हैं वे एकदम निकाल डालें)। ऐसा यहाँ कहते हैं। आत्मा ज्ञानानन्द प्रभु के भान बिना तेरा यह पठन किस काम का? और दूसरे को पढ़ाये दूसरे के निकाल छिलके, निकले जाएँगे। समझ में आया?

'आत्मा ही निश्चय से परमात्मदेव है, उसका अनुभव उन्हें नहीं होता, इसलिए वह भी जड...' है। आहाहा..! भाषा देखो न? ये शास्त्र के पढ़नेवाले भी जड़... क्यों? कि राग और पर का ज्ञान, वह चैतन्य नहीं है। भगवान आत्मा अफने अन्तर्मुख में जाकर चैतन्य का अन्तरज्ञान करे, उसे चैतन्य कहते हैं। आहाहा..! इतनी पुस्तकें इसने बनायीं, अमुक साधु ने इतनी बनायी, दो लाख (पुस्तकें बनायी) परन्तु धूल... दस लाख बनावे तो वह तो उसने राग किया और जड़ की क्रिया मैंने बनायी- यह तो मिथ्यात्व किया। मैंने पुस्तकें बनायी-यह मान्यता ही मिथ्यादृष्टि की है। पुस्तक बनाना यह...? समझ में आया?

'जिनवाणी पढ़ने का फल निश्चय सम्यग्दर्शन की प्राप्ति करने का प्रयास है।' देखो! 'जिनवाणी पढ़ने का फल निश्चय सम्यग्दर्शन की प्राप्ति करने का प्रयास है। इसके लिए ही चारों अनुयोगों के ग्रन्थ पढ़कर शास्त्री विषय जानकर, मुख्यरूप से यह जानना चाहिए कि यह जगत जीवादि छह द्रव्यों का समुदाय है,' इससे मेरा तत्त्व पृथक् है। आत्मा और ज्ञान को इसमें से निकाले तो उसने शास्त्र में कहे हुए फल को जाना कहलाये। आत्मा को निश्चय से न जाने तो कुछ इसने जाना नहीं है। यह विशेष कहेंगे...

(श्रोता :- प्रमाण वचन गुरुदेव!)

**आषाढ़ शुक्ल १०, सोमवार, दि. २७-६-१९६६, योगसार पर  
पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी का प्रवचन, गाथा-५३, प्रवचन-१९**

**सत्थ पढंतह ते वि जड, अप्पा जेण मुणंति।  
तहिं कारणि ए जीव फुड ण हु णिव्वाणु  
लहंति।।५३।।**

शास्त्र पढ़ने पर भी, उस शास्त्र का सार आत्मा अनन्त शुद्ध आनन्दकन्द है, उसका सम्यग्दर्शन प्रगटकरना चाहिए और उसका अनुभव करना चाहिए—वह करता नहीं और अकेला शास्त्र का व्याकरण, वैद्यक, काव्य, न्याय और ज्योतिष, धर्म शास्त्र पढ़े परन्तु अन्तर स्वरूप शुद्ध अभेद है, उस पर लक्ष्य, दृष्टि अभेद पर न करे तो इसके शास्त्र मन्थन में कोई सार नहीं है। कहो, समझ में आया इसमें?

अध्यात्म से बाहर रहता है। अन्तर स्वरूप... वीतराग के शास्त्र का कहने का आशय तो (यह है कि) भगवान आत्मा एक समय में अभेद पूर्ण वस्तु है—उसका अनुभव करना, उसका ज्ञान करके उसके अन्दर में अकाग्र होना, यह शास्त्र का सार है। शास्त्र पढ़कर भी यह न करे तो उन शास्त्र पढ़नेवालों को जड़ कहा है। जड़ कहा है न? पढ़-पढ़कर करने का था, वह तो किया नहीं; शास्त्र के पठन में रुक गया। देखो! अन्दर है, इस तरफ...

**‘जड़ जैसे ही आत्मज्ञान रहित हैं।  
जिनवाणी जानने का फल निश्चयसम्यग्दर्शन की  
प्राप्ति करने का प्रयास है।’** जिनवाणी सुनकर, पढ़कर, धारण कर फल तो यह है कि अन्दर स्वरूप का निश्चयसम्यक् निर्विकल्प आत्मा की प्रतीति करना और अनुभव करना, यह उसका सार है। यह नहीं किया, इसके बिना क्रियाकाण्ड और शास्त्र-पठन किया करे, उसमें कहीं आत्मा का झुकाव नहीं होता, (उसे) जड़ कहा है, जड़। **‘चार अनुयोगों के ग्रन्थ पढ़कर...’** चारों अनुयोग पढ़कर, छह द्रव्य जानकर, नव तत्त्व जानकर, पंचास्तिकाय को जानकर... जानकर अन्दर निकालना तो आत्मा है; उस आत्मसन्मुख का

अनुभव और दृष्टि नहीं है तो उस चारों अनुयोग के पठन को—सबको यहाँ जड़ कहा है। जिसका चार गति का फल है, उसे जड़ कहा है। समझ में आया?

**‘भेदज्ञान की कला प्राप्त करके  
निश्चयसम्यग्दर्शन के लाभ के लिये नित्य  
भेदविज्ञान का मनन करना।’** शास्त्र कहकर तो यह कहना है न कि राग और कर्म से तेरी चीज भिन्न है और यह आत्मा अपने अनन्त स्वभाव-गुण से अभिन्न है। समझ में आया? आत्मा अनन्त गुण शुद्ध चैतन्य, अतीन्द्रिय आनन्द आदि गुण आत्मा के हैं—ऐसे गुण से आत्मा अभिन्न एक है और राग, विकार, शरीर से आत्मा भिन्न है। यदि ऐसे आत्मा का अन्तर ज्ञान, निर्विकल्प वेदन और दृष्टि नहीं की तो इस शास्त्र पठन का उसे कोई फल नहीं। आहाहा..आह कहो, समझ में आया इसमें कुछ? क्या करना? चक्की लाकर गेहूँ दलना... उसे पता लगता है। आहाहा..!

कहते हैं, भाई! यह तो बाहर की वस्तु है। वस्तुस्वरूप एक समय में सच्चिदानन्दस्वरूप आत्मा है। आत्मा शाश्वत ज्ञान और आनन्द का भण्डार है। उस आत्मा का अन्तर अनुभव करना और दृष्टि करके लीन होना, यही सम्पूर्ण (जिनागम का सार है)। शास्त्र भले ही कम पढ़ा हो, विशेष आता न हो परन्तु करने योग्य यह है। यह न किया होवे तो उसने पढ़कर क्या किया? समझ में आया?

यहाँ नीचे इन्होंने थोड़ा लिखा है। समझ में आया? **‘अन्दर आत्मा का साक्षात्कार हो जाता है।’** यदि अन्तर में प्रयत्न करे तो **‘आत्मानन्द का अनुभव होता है, तभी मोक्षमार्ग का पता मिलता है।’** अन्तर का आत्मा ज्ञायक निर्विकल्प है—ऐसा प्रतीति में आने पर, मोक्ष का मार्ग यह है—ऐसा उसे पता लग जाएगा। इसके बिना शास्त्र पढ़ने में कुछ

पता नहीं लगेगा। 'समस्त शास्त्रों के पठन का हेतु सम्यग्दर्शन का लाभ है।' देखो! पहले यह लिया। अन्य कर्हे, क्रिया करना, व्रत पालना-यह शास्त्र का फल है। यहाँ तो कहते हैं कि पहले सम्यग्दर्शन करना, यह पहला फल है। सम्यग्दर्शन के बाद स्वरूप में स्थिरता-चारित्र करे, वह तो उत्कृष्ट वैराग्य है, उत्कृष्ट पुरुषार्थ है, परन्तु पहले यह सब पढ़कर सम्यग्दर्शन का लाभ चाहिए। उसे नहीं पाया तो शास्त्र पढ़ना कार्यकारी नहीं है। शास्त्र पढ़कर क्या (क्रिया)? वाद-विवाद किया, दूसरे को समझाया और दूसरों से बहुत बातें धारण की, परन्तु जो करने का था, वह तो किया नहीं।

'अनेक जीव, व्यवहार शास्त्र में कुशल होकर विद्या का मद करके उन्मत्त हो जाते हैं...' व्यवहार शास्त्र में बाह्य में कुशल (होवे, वह) मद करता है, मद। हम पढ़े हैं, हमें आता है। समझ में आया? उसे कुछ नहीं आता; उसे समझाना नहीं आता, बोलते नहीं आता और (कहात है कि) हमें तो सब आता है। कहो, भाई! आहाहा..!

मुमुक्षु :- आता होवे तो...

उत्तर :- क्या आता होवे तो? धूल कहलाये? इसे आना कहते हैं? यह आना है ही नहीं। आत्मा का अन्तर निर्विकल्प श्रद्धा और वेदन करना, वह 'आना' है। समझ में आया? हजारों लोगों को समझाना या लोगों से बातें धारण करना, यह कहीं तात्त्विक बात नहीं है। भगवान आत्मा अन्तर आनन्दकन्द सच्चिदानन्दमूर्ति है, उसका अन्तर में वेदन करके, निर्विकल्प आत्मा का स्वाद लेना, अनुभव करना-यह पूरा फल है। यह किया, उसने सब किया। समझ में आया? यह किया नहीं, उसने कुछ किया नहीं।

'उन्मत्त हो जाता है, कषाय की मलिनता बढ़ा देता है।' देखो, बढ़ा देता है कषाय अभिमान बड़े, मुझे आता है, देखो, उसे नहीं आता। देखो! इसे आया, इतना बोल हमको आये, हमको जवाब देना आता है, हम बड़े पंडित चतुर हैं (ऐसा) मिथ्या अभिमान बढ़ता है। आत्मा ज्ञानानन्दस्वरूप है, उसके

अन्तरभान बिना ऐसे बाह्य पठन, कषाय वृद्धि करता है। 'ख्याति पूजा लाभ का प्रेमी होकर...' बाहर में प्रेमी है, दुनिया में बड़ा कहे। 'सांसारिक विषय-कषाय की पुष्टि के लिए ही ज्ञान का उपयोग करता है। उसमें कभी अध्यात्मिक ग्रन्थ नहीं पढ़ता, कभी आत्मा के शुद्धस्वरूप का मनन नहीं करता।' कदाचित् पढ़े तो भी अन्तर मनन (नहीं करता) अन्तर में आनन्दस्वरूप में झुकाव करके निर्विकल्प दशा प्रगट करना (चाहिए), वह नहीं करता। 'उसके अन्तर संसार का मोह घटने के बदले बढ़ता जाता है।' ठीक लिखा है। किस ओर है? यहाँ (है)? है या नहीं अन्तर? है।

'वे आत्मज्ञान का प्रकाश पाये बिना अज्ञान के अन्धकार में ही जीवन गँवाकर मनुष्य जन्म का फल प्राप्त नहीं करते।' अज्ञान में... शास्त्र पढ़े, बड़प्पन लेकर वाद-विवाद (क्रिया) परन्तु भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द का स्वरूप है, उसे अन्तर सम्यग्दर्शन द्वारा, निश्चय द्वारा अनुभव न करे तो उसकी सम्पूर्ण जिन्दगी अफल जाती है। धूल भी नहीं... दुनिया लाखों माने या न माने, उसके साथ कोई सम्बन्ध नहीं है। आहाहा..! समझ में आया?

मुमुक्षु :- बहुत लोग माने तो अधिक अच्छा।

उत्तर :- उसके साथ क्या काम है? माने या न माने, उसके घर रहा। समझ में आया?

'शास्त्रों का ज्ञान उनके लिए संसार बढ़ानेवाला बन जाता है।' भाषा देखो! आत्मा अखण्ड आनन्दकन्द की दृष्टि के अनुभव बिना उसे शास्त्र का ज्ञान संसार वृद्धि का कारण होता है। जहाँ-जहाँ हमें आता है, उसे नहीं आता, हम ऐसा सीखे... समझ में आया? इसे अपनी बढ़ाई के आगे दूसरे की महत्ता नहीं सूझती। समझ में आया? 'निर्वाणमार्ग से उन्हें दूर ले जाता है।' लो! समझ में आया? यह ५३ (गाथा पूरी) हुई।





पूज्य भाईश्री शशीभाई द्वारा परमागमसार  
ग्रंथके ९७१ वचनामृत पर भाववाही  
प्रवचन, दि. ६-७-१९८५, प्रवचन  
क्रमांक-५८० (विषय : विधि)

सात तत्त्वोंको जाने बिना आत्माकी श्रद्धा नहीं होती। एक जीवतत्त्वको जाननेमें सातों ही तत्त्वोंका ज्ञान हो जाता है। जीवतत्त्व केवल सामान्यस्वरूप ही नहीं परन्तु अपने विशेषो सहित है। जीव-अजीव सामान्य हैं तथा आस्रवादि शेष पाँच तत्त्व उनके विशेष हैं। अज्ञानीजन उन्हें जाने बिना ही व्रत-तपमें धर्म मानते हैं। नय-निक्षेप-प्रमाण द्वारा रागरहित वस्तुका ज्ञान करना, वह प्रथम योग्यता है; तत्पश्चात्

स्वभावके लक्ष्यसे रागका अभाव होता है-यह प्रयोजनभूत व कीमती बात है। यह बात रह जाए, तो फिर कुछ भी कार्यकारी नहीं है। ९७१.

पृष्ठ-१९४, ९७१। तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनम्, इस विषयमें यहाँ स्पष्टीकरण है। 'सातों...' अर्थात् 'सातों तत्त्वोंको जाने बिना आत्माकी श्रद्धा नहीं होती। एक जीवको जानेनेमें...' अर्थात् जीवके विशेषसहित एक जीवको जाननेमें उसकी शुद्धाशुद्ध पर्यायोंमें सातों तत्त्व आ जाते हैं।

शास्त्रवचन ऐसा भी आये कि एक आत्माको जाना उसने सर्व जाना। तो एक आत्माको जाननेमें ही उपयोग लगाना, पुरुषार्थको लगाना। परन्तु वहाँ ऐसा निषेध नहीं है कि हेय-उपादेय तत्त्वको जाने बिना कोई सीधा आत्माको जानता है। अथवा कोई जीवको इस तरह प्रारंभ नहीं होता कि सीधा आत्मज्ञान हो जाय और उसे अवस्थामें-से दोष निकालकर शुद्धि करनेका भाव न हो, हेतु न हो, लक्ष्य न हो, इस प्रकार कोई जीवको शुरूआत नहीं होती। इसलिये शुरूआत सम्बन्धित एक सूत्र सिद्धान्त यह है कि पूर्णताके लक्ष्यसे शुरूआत। उस पूर्णताके लक्ष्यमें संपूर्ण शुद्धि, पूर्ण शुद्धि प्राप्त करनेका जिसका लक्ष्य है।

यहाँ लक्ष्यका अर्थ जिसे वह साध्य करना है। साध्य अपेक्षा-से यहाँ लक्ष्य है। ऐसा जिसका ध्येय है, उसे वास्तविक शुरूआत होती है। उसमें हेय-उपादेय आ गया। शुद्धि उपादेय है, संवर, निर्जरा, मोक्ष आ गया। अशुद्ध हेय है, उसमें आस्रव, बन्ध, पुण्य-पाप आ गये। इसप्रकार सातों तत्त्वोंका विषय बीचमें किसी भी प्रकार-से आये ही नहीं (ऐसा नहीं बनता)। किसीको तिर्यचादिको नाम न आये वह अलग बात है, परन्तु वह विषय बीचमें न आये और किसीको सीधा शुद्धात्माका ज्ञान हो, ऐसा नहीं बनता।

इस तरह जिसे शुद्धात्माका ज्ञान हुआ, जिसे आत्माकी श्रद्धा हुई, उसे सात तत्त्वोंका पद्धतिसहित विस्तार हो वा न हो, उस पद्धतिका बन्धन उसे नहीं है, उसे पद्धतिका बन्धन नहीं है। परन्तु जो स्वयंके उपयोगको अनेक प्रकार-से बाह्य प्रयोजनमें घुमाता है, बाह्य प्रयोजनमें जो अनेक प्रकार-से गहराईमें जाकर निज कार्यकी सिद्धि हेतु पुरुषार्थ करता है, ऐसा ज्ञानका एवं वीर्यका क्षयोपशम जिसे है, ऐसे जीवको तो ऐसा



फरमान है कि तुझे पद्धतिसहित इस विषयको समझमें लेकर अंतर्मुख होकर शुद्धात्माका श्रद्धान-ज्ञान करना। ऐसी पद्धति है।

अतः 'सातों तत्त्वोंको जाने बिना आत्माकी श्रद्धा नहीं होती। एक जीवतत्त्वको जाननेमें...' यहाँ विशेषसहित जीव लिया है। एक जीवको माने यहाँ जीव सामान्य नहीं लेना है। एक जीवको जाननेमें सातों आ जाते हैं। इसलिये यहाँ स्पष्ट किया कि जीव अकेला सामान्य नहीं है, ऐसा कहा। 'परन्तु अपने विशेषों-सहित है।' ज्ञानप्रधान बात है न। अकेला सामान्य है वह श्रद्धाका विषय है। अकेला सामान्य है वह अवलम्बनका विषय है। परन्तु उसके विशेषोंके ज्ञानपूर्वक वह अवलम्बन होता है। ऐसे ही किसीको सीधा अवलम्बन नहीं होता। ऐसा पूर्वक्रम होने-से कोई उस पूर्वक्रमको ऊड़ाकर ऐसा कहे कि, नहीं, हमें सीधा आत्माका श्रद्धान करना है, तो ऐसा नहीं बनता।

इसलिये पूर्व क्रम है वह भी एक नियत परिस्थिति है। जैसे मोक्षका पूर्वक्रम मोक्षमार्ग है-सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, सम्यग्दर्शन, तत्पश्चात् चारित्रमें आंशिक अथवा पूर्ण विरती है और मुनिदशा आदि है, उसके बाद संपूर्ण शुद्धिरूप मोक्ष होता है। ऐसा ही पूर्वक्रम है और वह नियत है। अनादिअनन्त वह नियत है। कोई ऐसा कहे कि हमें सम्यग्दर्शनका कोई काम नहीं है, हमें मुनिदशाकी कोई आवश्यकता नहीं है, हम तो आत्मामें ऐसे जम गये हैं कि बाहर ही नहीं आते हैं, अतः हमारा तो मोक्ष ही है। ऐसे भी कभी मोक्ष नहीं होता।

जिस विधि-से कार्य होता है, यह तो वस्तु-विज्ञान है न। आत्म पदार्थका यह विज्ञान है इसलिये जिस विधि-से कार्य होता है, उसी विधि-से होता है। मोक्षकी प्राप्ति भी जिस विधि-से होती है, उस विधि-से होती है, सम्यग्दर्शनकी प्राप्ति भी जिस विधि-से होती है, उसी विधि-से होती है, अनादिअनन्त। सर्व द्रव्य-क्षेत्र-काल-भावमें यह सिद्धान्त अबाधित रहता है। इसमें कदापि फेरफार नहीं होता। गुरुदेव

वह दृष्टान्त देते थे कि हलवा कभी भी अन्य विधि-से बनता। जब भी हलवा बनाना हो तब आटेको घीमें सेककर बादमें गुड़के पानीमें हलवा बनाया जाता है। उस प्रक्रियामें कोई भी फेरफार करे तो हलवा नहीं बनता, दूसरा कुछ भी बने, परन्तु हलवा नहीं बनता। किसी भी कालमें फेरफार नहीं होता। हजार साल पहले भी इस विधि-से ही बनता है और हजार सालके बाद, हजारों सालके बाद भी इसी विधि-से बनता है।

मुमुक्षु :-

पूज्य भाईश्री :- उसके भाव देखकर दे।

मुमुक्षु :-

पूज्य भाईश्री :- जबतक हो सकता है तबतक तो सम्यग्दर्शनकी प्राप्तिके बाद ही देते हैं। परन्तु कोई ऐसा भी प्रकार संभवित है, अत्यंत वैरागी जीव हो, जिसके परिणाम संसारमें कहीं भी कोई भी प्रपचमें लगते न हो और मुनिदशा अंगिकार करने-से उसके आत्माको सम्यग्दर्शन एवं चारित्रधर्म भी प्राप्त होनेकी संभावना देखते हो तो दे। उसमें कोई दिक्कत नहीं है। परन्तु वह किसीके लिये लागू पड़ता है। सर्वसाधारण वह मार्ग नहीं है, जो वर्तमानमें सामान्य हो गया है। सामान्य हो गया है उसका कारण यह है कि सम्यग्दर्शन दीक्षा देनेवालेको नहीं है और देनेवालेको नहीं है इतना ही नहीं, अपितु उसे सम्यग्दर्शन कैसे होता है, इसका भी ज्ञान नहीं है। और वह ऐसा मानकर बैठ गये हैं कि हम तो चारित्रवंत हैं। सम्यग्दर्शन बिना भी हम (चारित्रवंत हैं)। यद्यपि उन्हें सम्यग्दर्शन नहीं है ऐसा नहीं मानते हैं, सम्यग्दर्शन तो साधारण है हमारे लिये तो। परन्तु इससे अतिरिक्त हम चारित्रवंत हैं। इस तरह गृहीत मिथ्यादर्शनमें रहकर दूसरोंको दीक्षा देनेका जो विषय है वह तो बिलकूल अनधिकृत है। अभी तो स्वयंको दीक्षा-शिक्षा लेनेका प्रकार बाकी है, ऐसेमें दूसरोंको दीक्षा देनी यह तो बिलकूल अधिकार बाहरका विषय है। इसलिये वर्तमानमें जो चल रहा है वह तो बिलकूल गड़बड़वाली बात है। उसका मिलान हो सके ऐसा नहीं है। परन्तु

कोई कालमें कोई जीवके विषयमें ऐसी संभावना है। क्योंकि द्रव्यलिंगी मुनि ही नहीं होते। यदि ऐसा नहीं होता हो तो कोई द्रव्यलिंगी मुनि ही नहीं होते। द्रव्यलिंग और भावलिंगके बीचकी चर्चा ही समाप्त हो जाती है। द्रव्यलिंगी मुनि भी होते हैं।

जो द्रव्यलिंगी नग्न दिगंबर मुनि होते हैं, पंच महाव्रत, अट्टाईस मूलगुणका पालन करनेवाले, तो किसीको भावलिंग आना बाकी होता है अथवा कोई सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र पर्यंत पहुँच नहीं पाते, फिर भी कषायकी मन्दतामें रहकर नौवीं ग्रैवेयक पर्यंत जाते हैं। ऐसा प्रकार भी बनता है, नहीं बनता है ऐसा नहीं है। परन्तु विचार करना है सबको अपने लिये। कोई भी प्रकार हो, मुझे आत्महितार्थ क्या उपयोगी है? मेरे कामका क्या है? मुझे अंगीकार करने योग्य क्या है? उस पर उसका लक्ष्य होना चाहिये। फिर दिक्कत नहीं है। बाकी वह सब जाननेके अनेक प्रकार हैं।

**‘जीवतत्त्व केवल सामान्यस्वरूप ही नहीं परन्तु अपने विशेषों सहित है।’** देखो! यहाँ जहाँ तत्त्वार्थ श्रद्धानं स्थापित करना है, वहाँ केवल सामान्य नहीं है। परन्तु उसके विशेषों सहित है, इस प्रकार वजन देते हैं। ज्ञान करवानेकी बात है। अवलम्बनका विषय तो अकेला सामान्य ही है। लेकिन जो अविधिसे चलना चाहता है और निश्चयके आभासमें चला जायेगा ऐसा दिखता है तब जीवके विशेषोंको भी जोर-से स्थापित किया जाता है। उसे उस दवाईकी जरूरत है। तो उसे स्थापित किया जाता है।

मुमुक्षु :- विशेषका ज्ञान न हो और सामान्यका अवलम्बन हो सकता है?

पूज्य भाईश्री :- होता ही नहीं, कैसे हो? विशेषोंका ज्ञान नहीं, विशेषमें मुझे निर्दोष होना है, सर्व शुद्ध होना है, पूर्ण शुद्ध होना है और दोषका एक कण भी मुझे नहीं चाहिये, इस अभिप्रायमें आये बिना और उस ध्येयमें आये बिना सीधा सामान्यका निर्दोष स्वतत्त्वका निज तत्त्वका सीधा अंतर्मुखी ज्ञान प्रगट हो, ऐसा नहीं बनता। क्योंकि वह पदार्थ ही भास्यमान नहीं होता है। जो भूमिकाके ज्ञानकी निर्मलता

है, वह यहाँ होती है। निर्दोषताकी भावनामें होती है, पूर्णताकी भावनामें होती है।

अब, इस भावनामें आये नहीं तबतक उसका जो अनादिका मतिदोष है, उसका ज्ञान दर्शनमोह एवं रागादि-से रंजित है, उस मलिन ज्ञानदर्पणमें स्वयंका ही स्वभाव स्वरूप प्रतिभासित नहीं होता। ज्ञानको स्वयंका ही स्वभाव प्रतिभासित नहीं होता। जिसे भासन न हो उसे अवलम्बन हो, यह बात कहाँ रही? अभी तो भासन नहीं होता है। अवलम्बनमें आनेका तो उसके लिये कोई सवाल नहीं है। ऐसा है। इसलिये वह नहीं होता। अतः वह निश्चित प्रकारकी परिस्थिति है।

जीव **‘अपने विशेषों सहित है।’** सातवें अधिकारमें जहाँ निश्चयाभासीका वर्णन लिया है, वहाँ वह पर्यायको गलत प्रकार-से, अविधि-से ऊड़ाता है, उसे वहाँ ऐसा स्थापित किया है कि तू द्रव्य.. द्रव्य.. द्रव्यकी बात करता है, परन्तु तुझे द्रव्यका ज्ञान है? द्रव्य क्या चीज है? अनादिअनन्त पर्यायोंका पिण्ड सो द्रव्य है, वहाँ ऐसा कह दिया। टोडरमलजीने क्या कहा? द्रव्य तो क्या है? कि अनादिअनन्त जो पर्यायें होती हैं, उसका पिण्ड द्रव्य है। उसके सिवा दूसरा क्या है, तुझे मालूम है? तू पर्यायको मानता नहीं है, परन्तु द्रव्य अर्थात् अकेली पर्याय ही हैं, ऐसा कह दिया। द्रव्य अर्थात् अकेली पर्याय। इतना पर्याय पर वहाँ वजन दिया है। उसने पर्यायका पहलू गलत प्रकार-से छोड़ दिया है, तो उसे ऐसे समझाते हैं कि शुद्धाशुद्ध पर्यायोंका पिण्ड सो द्रव्य है। ऐसा कहा है। अतः पूर्णरूपेण बराबर उसे पदार्थका ज्ञान हो तो जूठी भ्रमणामें आकर भूल न कर बैठे।

**‘जीवतत्त्व केवल सामान्यस्वरूप नहीं...’** इसलिये ऐसा कहा कि, आगमचेष्टा जेठ्ठा। आगमचेष्टा है वह श्रेष्ठ है, ज्येष्ठ है। स्वरूप लक्ष्यपूर्वक आगमका परिचय रखना। अथवा आगमकी प्रवृत्ति रखना। क्योंकि छद्मस्थको उपयोग स्वरूपमें एकाकार रहनेका समय अत्यंत अल्प है। यदि उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त रहे तो तो केवलज्ञान हो जाय। फिर तो बाहर आनेका प्रश्न नहीं है। परन्तु उसके पहले जो त्रुटक-त्रुटक आता

है उसका काल बहुत अल्प है और बाहर रहनेका काल अधिक है। उसमें भी चौथे, पाँचवें गुणस्थानमें तो बहुत अंतराल है, शुद्धोपयोगको और सविकल्पको। छठे-सातवेंमें भी शुद्धोपयोग-से अशुद्धउपयोगका काल डबल है। शुद्धोपयोगमें मुनि रहे उससे विकल्पमें डबल काल रहते हैं। वहाँ भी कम-से कम डबल है। कम-से कम या अधिक-से अधिक उतना ही उसका परिमाण है। तो भी है तो डबल न? तो उपयोग कहाँ लगे? कि जिस शुद्धात्मामें उसको उपयोग स्थिर करना है, ऐसे शुद्धात्माका विवरण जिस साहित्यमें-आगममें है, वहाँ वह उपयोग लगाता है। दूसरे अन्य निमित्तोंमें वे अपना उपयोग लगाते नहीं। ऐसी सामान्य परिस्थिति है।

जीव 'अपने विशेषों-सहित है। जीव-अजीव सामान्य हैं तथा आस्रवादि शेष पाँच तत्त्व उसके विशेष हैं।' जीव और अजीव दो द्रव्य सामान्य लिये। उसके विशेषोंमें पाँचो प्रकारकी आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा और मोक्ष। कर्म परमाणुमें भी वह तत्त्व लिये और जीवके भावमें भी वह पाँचो तत्त्व लिये। परस्पर मेल देखकर, सदृश्यता देखकर दोनोंके नाम एक समान हैं और निमित्त-नैमित्तिक दोनों पर्यायोंके बीच सम्बन्ध रहा है।

'अज्ञानीजन उन्हें जाने बिना ही व्रत-तपमें धर्म मानते हैं।' क्या है? कि तीनों संप्रदाय-फिरके वर्तमानमें जो विद्यमान हैं, उसमें जो प्रवृत्ति देखी जाती है, उसमें नौ तत्त्व आदि तत्त्वज्ञान विषयक प्रवृत्ति कम हो गयी है और लोग व्रत, तपमें अपनी शक्तिका उपयोग करते हैं। इसे जाने बिना हेय-उपादेयका तात्त्विकरूप-से ज्ञान किये बिना, समझ किये बिना लोग व्रत-तपमें धर्म मानते हैं, उसे करते हैं और उसमें धर्म मानते हैं कि इतना तप किया इसलिये उतना धर्म हुआ अथवा ये जो कुछ किया जाता है वह सब आराधनाके प्रकार हैं। अनेकविध प्रकार से जो क्रियाएँ की जाती है उसे आराधना गिनी जाती है।

हेय-उपादेय तत्त्वोंका ज्ञान नहीं है, समझ नहीं है और सीधी आराधना हो, ऐसा तो कभी बनता

नहीं। फिर भी उसे संप्रदायोंमें आराधना मानी गयी है।

मुमुक्षु :- आस्रव-बन्धको संवर-निर्जरा मानते हैं।

पूज्य भाईश्री :- हाँ, विपरीत मानते हैं। ऊल्टा ग्रहीत मिथ्यात्वमें चले जाते हैं। आस्रव एवं बन्ध होता है शुभ परिणामोंमें शुभ प्रकृतिका, मानते हैं कि हमें संवर होता है, निर्जरा होती है और ऐसा करते-करते एक न एक दिन हमारा मोक्ष हो जायगा। वह तो दूर जाते हैं, धर्म-से तो ऊल्टा दूर जाते हैं। क्योंकि तत्त्वको विपरीत साधते हैं। जो हेय तत्त्व हैं, उसे उपादेयपने साधते हैं। जानते भी ऐसा है और मानते भी ऐसा ही है, इसलिये करते भी वैसा ही है। ऐसा होता है। प्रारंभ हो गया न? चातुर्मास चालू हो गया न? चातुर्मासकी आराधना करनेका संप्रदायोंमें चलेगा। वह वास्तवमें आराधनाका स्वरूप नहीं है।

मुमुक्षु :- आराधनाका स्वरूप क्या है?

पूज्य भाईश्री :- सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र्याणि मोक्षमार्गः। मोक्षमार्ग एक ही आराधन है। सम्यग्दर्शनका तो ज्ञान नहीं है कि कैसे प्राप्त हो और कैसा होता है? सम्यक्ज्ञानका विषय क्या है? किस प्रकार-से है? उसके स्वरूपका ज्ञान नहीं है। सीधी आराधनाकी बात चलती है। वह बात तो किसी भी प्रकार-से सफल हो ऐसा नहीं है।

मुमुक्षु :- आराधना माने क्या?

पूज्य भाईश्री :- राध अर्थात् सेवन करना। आराध अर्थात् अच्छी तरह सेवन करना। और अपराध अर्थात् अनिष्टरूप-से सेवना। मूल धातु है शब्दके संस्कृतमें, वह राध धातू है। फिर उपसर्ग लगते हैं। आराध, अपराध आदि। परन्तु राध अर्थात् सेवन करना। ऐसा उसका अर्थ है।

एक गाय है, इसमें पद है। देवचंदजीका है या आनन्दघनजीका है। 'भृंगी इलिकाने चटकावे, ते भृंगी जग जोवे।' इलिका अर्थात् लट। भौरी लटको डंख मारती है। वह उसका सेवन करती है। मूर्गी अंडेका सेवन करती है न? जो अंडे रखनेवाले पक्षी हैं, वह अंडेका सेवन करते हैं तो अंडेमें-से पक्षी होता है। ऐसे ही अंडेको फोड़े तो उसमें कोई पक्षी

नहीं है। वह तो सब रस निकल जाता है। लेकिन उसका सेवन करते हैं और अन्दर-से उसकी पर्यायांतर होकर जीव बाहर आता है। इसी प्रकार-से वहाँ वह बात ली है कि जो आराधना करते हैं, सेवन करते हैं, वहाँ ऐसी ही भाव है। आगेका पद क्या है, वह मुझे याद नहीं रहा। आगेका पद याद है? श्रीमद्गीके पत्रोंमें आता है। वहाँ वह बात ली है। भौरी है वह लटको डंख मारती है और लटमें से भौरी होती है। वैसे तो लट दो इन्द्रिय प्राणी है, भौरी तीन इन्द्रिय प्राणी है। लेकिन ऐसा ही कोई प्रकार है।

**‘नय-निक्षेप-प्रमाण द्वारा रागसहित वस्तुका ज्ञान करना,...’** रागसहित माने? जिस रागदशामें खड़ा है, जिस सरागदशामें खड़ा है, उस सरागदशामें प्रथम नय-निक्षेप-प्रमाण द्वारा वस्तुका ज्ञान करना। वह सरागदशाकी **‘प्रथम योग्यता है;...’** वह प्रथम योग्यता है। अभी प्राथमिक योग्यताका ठिकाना न हो और सीधा आराधन करे तो? वे लोग आरोप ऐसा लगाते हैं कि आप यह तत्त्वज्ञानकी बातें करते हो, वह तो बड़ी बीए, एल.एल.बी.की है और हम तो प्रथम कक्षावाले। हमें वह सब आता नहीं। परन्तु भाई! आराधनाका विषय बीए. एल.एल.बी.का है। प्रथम तो उसे नय-प्रमाण-निक्षेप द्वारा तत्त्वकी समझ करनी वह उसकी प्रथम भूमिका है और प्रथम योग्यता है। आराधनका विषय उत्कृष्ट और ऊँचा है। श्रद्धा-ज्ञान-से तो आराधनाका विषय ऊँचा है। चरित्त खलू धम्मो। चारित्र है वह तो निश्चय धर्म है। स्वरूपस्थिरतारूप चारित्र वह चारित्र, हाँ! वह निश्चय धर्म है, वह तो ऊँचा विषय है। तो कहते हैं कि, नहीं, वह हमारा प्रथम कक्षाका विषय है और यह समझ करनी वह बीए. एल.एल.बी.का विषय है। इसप्रकार ऊलटा-सुलटा चलता है। ज्ञानी-अज्ञानीका जो चलनेका मार्ग है वह ऊलटा-सुलटा है। एक मार्ग पर चलनेपर मोक्षमें जाया जाता है और दूसरे मार्ग पर चलनेपर संसार परिभ्रमण और परंपरा निगोदमें जाना होता है। यह परिस्थिति होती है।

मुमुक्षु :- वस्तुका ज्ञान करना माने क्या?

पूज्य भाईश्री :- वस्तुका ज्ञान करना माने जीव-अजीव पदार्थोंका उसके विशेषों सहित ज्ञान करना। वस्तुका ज्ञान करना अर्थात् आत्मामें पुण्य क्या? पाप क्या? संवर क्या? निर्जरा क्या? मोक्ष क्या? बन्ध क्या? उसका तात्त्विक ज्ञान करना। जैसे कि समयसारका बन्ध अधिकार लिया। तो वहाँ बन्धतत्त्वका निरूपण करते हुए ऐसा कहा कि रागादिके साथ उपयोगका जो एकत्व होता है, उस एकत्वमें बहुत रस होता है तब होता है। तो वह जो रागमें मैं-पनारूप भावका जो चीकनापन है, वह बन्धतत्त्व है। ऐसे लिया। इसलिये तो आस्रव और बन्धको अलग-अलग किये हैं। आस्रव एवं बन्धक अलग किया है।

क्योंकि यहाँ हेय-उपादेयके दृष्टिकोण-से नौ तत्त्वोंका निरूपण किया है। इसलिये एक अजीवमें पाँच द्रव्य ले लिये। पुद्गल द्रव्य अनन्त, क्षेत्र-से महान अनन्त है ऐसा आकाश, असंख्य कालाणु ले लिये। और चौदह ब्रह्माण्डमें व्यापक है ऐसा, असंख्य योजनमें व्यापक है ऐसा धर्मास्तिकाय एवं अधर्मास्तिकाय, इन पाँचोंको एक वर्गमें रखा। नौ वर्ग करे खातावहीमें खतौनी करनेके लिये तो इन पाँचोंमें परमाणुकी संख्या अनन्त, कालाणुकी संख्या असंख्य, आकाश क्षेत्र-से अनन्त, और धर्मास्ति, अधर्मास्ति असंख्य योजनके लोकव्यापक द्रव्य, इन पाँचोंको एक ही वर्गमें रखा। इसलिये एक वर्गमें बीस-बीस प्रतिशत स्थान प्राप्त हुआ, एक-एकको। फिर संख्या गिनो तो किसे कितनी मिली? एक परमाणुको अनन्त भागमें मिली। जीवको एक वर्ग दिया गया, जीव सामान्य। जो परमपारिणामिकभाव परमात्मतत्त्व है, उसे एक वर्ग दिया। फिर उसका आश्रय करनेके लिये जो उसमें भेद-प्रभेद होते हैं, उसके तीन वर्ग किये-संवर, निर्जरा और मोक्ष। शुद्धिका प्रारंभ होना, शुद्धिकी वृद्धि होनी और शुद्धिकी पूर्णता होनी। तात्त्विक दृष्टि-से तीन भेद किये और जो हेय तत्त्व है, अनादि-से जीव जिसमें खेल रहा है, ऐसे पुण्य-पाप, आस्रव, बन्ध अशुद्ध पर्यायके चार तत्त्व किये। उनकी चार वर्गमें खतौनी की। एक भावकी। जीवका एक समयका विकारी परिणामका चार वर्ग कर दिये।

उनका पृथकरण करनेके लिये उसका एनालिसीस करते हैं। ये करते हैं न लेबोरेटरीमें सब माईक्रोलोजिस्ट। इसमें ये जंतु कितने हैं? ये जंतु कितने हैं? एक खूनका बन्दु ले उसमें कितने विभाग-से उसे देखते हैं। वैसे जिस अशुद्धि-से बचना है, जो रोग अनादिसे जीवको लागू हुआ है और जिससे वह परिभ्रमण करता है, जिससे उसे अनन्त दुःखमें सड़ना होता है, जो दुःख देखे जाय नहीं, भोगनेका तो कहाँ सवाल है? देखे जाय नहीं ऐसे दुःखमें जीव है, उसका नाश करनेके लिये, उस रोगका नाश करनेके लिये उसके चार पहलू-से नौ तत्त्वमें स्थान दिया। नौमें-से चार उसके। और शुद्धिके विषयमें तीन पहलू किये। यह वस्तु, प्रथम योग्यतामें नय, निक्षेप और प्रमाण द्वारा चारों पहलूओं-से यह वस्तु समझे बिना (उसे कदापि धर्म नहीं होता)।

मुमुक्षु :- आस्रव..

पूज्य भाईश्री :- क्योंकि पुण्य भी आस्रव है और पाप भी आस्रव है।

मुमुक्षु :- ..

पूज्य भाईश्री :- हाँ। आस्रवके दो भेद-पुण्यास्रव और पापास्रव। दोनोंमें आस्रव सामान्य है। तत्त्वदृष्टि-से पुण्य-पाप, आस्रव, बन्ध ऐसे चार भेद हैं। क्योंकि पुण्यको पुण्यतत्त्व-से देखना है, उसका तत्पना लेना है। पापमें पापतत्त्वका पापत्व लेना है। आस्रवमें आस्रव-आना, आना, स्रवना उस तत्त्वको देखना है। और बन्धमें अटकना होता है उसे देखना है। प्रतिबंध होता है उसे देखना है। कितनी सूक्ष्म दृष्टि है उसमें। जैसा माईक्रोलोजिस्टमें है, वैसा इसमें है। एक भाव, एक समयका एक भाव और तत्त्व चार।

... तीन ये। ... अंश है उसमें चार भेद पड़ते हैं और जो शुद्ध अंश है, उसमें तीन भेद पड़ते हैं, आंशिक मोक्षकी दृष्टि-से। समय एक जीवकी एक समयकी पर्याय और उसमें सात तत्त्व उत्पन्न होते हैं साधक दशामें तो। मिथ्यादृष्टिको चार है। आस्रव, बन्ध, पुण्य और पाप।

ऐसा 'वस्तुका ज्ञान करना, वह प्रथम

**योग्यता है;...** किस विधि-से मार्ग पर चले, वह भी जिसमें मार्गका निरूपण किया है ऐसे आगम-से उस बातको समझनी चाहिये। वैसे तो बनिये लोगोंकी क्रौम चतुर गिनी जाती है। कोई चाहे जितना मुनाफावाला व्यापार बताये तो चारों ओर-से जाँच करनेके बाद ही पहले यदि ट्रायल बेस पर, छोटे पैमाने पर काम होता हो तो अनुभव करनेके लिये छोटी ट्रायल ले लेगा अथवा ऐसा कहेगा कि मैं आपके यहाँ काम करनेके लिये सीखू, बैटू। उसमें कोई दिक्कत नहीं है। मुझे जम जाय फिर व्यापार करूँगा। भले ही बात मुनाफेके व्यापारकी है, मुनाफेकी बात है परन्तु मुनाफा करनेमें मुनाफेमें भी नुकसान हो जाता है। ऐसी चालाकी एवं चतुराई उसकी संसारमें तो है। यहाँ ऐसे ही आँख बन्द करके चला जाता है। जिन शास्त्रोंमें, जो पूर्वाचार्योंने, वे सब तो पूर्वज हैं, जिन पूर्वजोंने जो बात ज्ञानभण्डारमें भर रखी है, उसके सामने देखनेकी दरकार किये बिना, उसको सूलझानेकी दरकार किये बिना, ऐसे ही आँख बन्द करके भेड़चाल चलनेवालोंकी भाँति चलते रहता है, धर्मके प्रकरणमें। छिछली कड़ाहि लेने जाय और जितनी परीक्षा करता है, उतनी भी परीक्षा करता नहीं। छिछली कड़ाहि-से भी धर्मको सस्ता बना दिया। कहाँ गयी बनियेकी चतुराई? ये तो बहुत क्रीमती विषय है। बाहरमें रूपया, आना, पाई-से धर्म है वह तो अधिक क्रीमती चीज है, उत्कृष्ट तत्त्व है, उत्कृष्ट भाव है। उसमें अधिक-से अधिक चौकसाई करनी चाहिये। इसीलिये तो आचार्योंने यह कहा है कि, हम आज्ञाप्रधानीको हमारा खरा शिष्य नहीं कहते हैं। टोडरमल्लजीने इस बातकी चर्चा की है। परीक्षाप्रधानीको हम सच्चा शिष्य कहते हैं। ऐसी बात की है। इसलिये तू इस विषयमें परीक्षा कर, छंछेडकर इस बातको नक्की कर कि इसमें सत्य क्या है? फिर एक पैर आगे बढ़ाना, कदम आगे बढ़ाना कि मुझे किस दिशामें आगे बढ़ना है। ऐसे ही उपयोगका व्यापार करने जायगा तो मुनाफा करनेके बजाय बड़ा नुकसान कर बैठेगा। ऐसा है।

‘तत्पश्चात् स्वभावके लक्ष्यसे...’ ‘वस्तुका ज्ञान करना, वह प्रथम योग्यता है; तत्पश्चात् स्वभावके लक्ष्यसे रागका अभाव होता है...’ जिसे जीवतत्त्वमें जीव स्वभाव समझमें आता है और उस जीवमें रहा हुआ अनन्त गुणोंका अनन्त सामर्थ्य भी समझमें आता है, तब उसका उसे लक्ष्य बन्धता है, उसकी उसे अपूर्व महिमा उत्पन्न होती है। और उस वीतरागी तत्त्वके लक्ष्य-से उसे रागका अभाव होनेकी शुरुआत होती है। इसके अतिरिक्त वीतराग धर्म प्राप्त होनेका तो दूसरा कोई प्रकार नहीं है। तीनकाल तीनलोकमें दूसरा कोई प्रकार नहीं है।

‘तत्पश्चात् स्वभावके लक्ष्य-से रागका अभाव होता है-यह प्रयोजनभूत व कीमती बात है।’ ये नौ तत्त्वोंका विषय हेय-उपादेयके प्रयोजनकी दृष्टि-से सब कीमती बातें हैं। उसकी उपेक्षा करके धर्ममें कुछ करना चाहे तो कुछ हो ऐसा नहीं है। ‘यह बात रह जाए,...’ प्रयोजनभूत कीमती बात रह जाए, ‘तो फिर कुछ भी कार्यकारी नहीं है।’ जो कुछ करे उसमें कुछ कार्यकारी नहीं है। सब राखके ऊपर लीपाई है। अर्थात् राखके ऊपर लीपाई करने जैसा है। उससे कुछ होनेवाला नहीं है। ९७१ पूरा हुआ।

(पुरुषार्थमूर्ति पूज्य श्री निहालचंद्र सोगानीजी द्वारा साधर्मियों को लिखे हुए आध्यात्मिक पत्र)

नहीं होते हुए भी रकमके भ्रमसे मेरे पेट में ९ इंच गहरा खंजर मार दिया। डॉक्टरों को इजीली (शीघ्र) पल्स तक हाथ नहीं आई थी। ओपरेशन आदि होकर अस्पताल में रहना पड़ा। आज ही घरसे बाहर इस एकसीडेन्ट के बाद पहले-पहले निकल रहा हूँ।

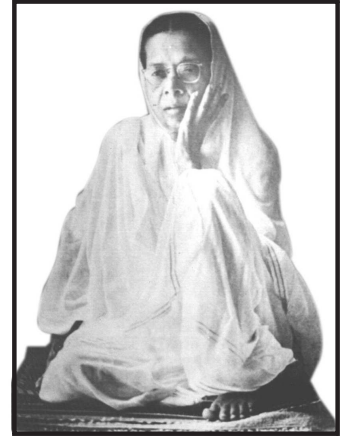
‘किस प्रकार आत्मा अपनी ओर पुरुषार्थ की वृद्धि करने का प्रयोग करता है?’ आपके इस प्रश्न पर मेरा तो इतना ही लिखना है कि प्रथम की यथार्थ श्रद्धा समय, श्रद्धा की पर्यायका अखण्ड की ओर जो झुकाव अथवा लीनता का पुरुषार्थ होता है उसमें कालभेद नहीं है व यथार्थ श्रद्धा में जो पुरुषार्थ का प्रयोग है, बारम्बार उस ही प्रयोग की वृद्धि होती रहती है, उसे वृद्धि का पुरुषार्थ कहते हैं। पहले के व बाद के पुरुषार्थ के प्रकारमें कोई प्रकार का फर्क नहीं है। इस ही लिये गुरुदेवश्री का यथार्थ समझण पर बारम्बार जोर रहता है, कारण इस प्रथम समझण में ही भविष्य का सम्यक् पुरुषार्थ गर्भित है।

अखण्ड ज्ञानघन पुरुषाकार (देहाकार) शरीर, कर्म, भावकर्म व शुद्धपर्याय से भी ऊँडा चैतन्य तत्त्व ‘मैं’ हूँ, यह ही मेरा अस्तित्व है, शुद्धपर्याय का अस्तित्व भी इसमें गौण है; ऐसी प्रथम यथार्थ श्रद्धा जब ही कही जाती है कि ऐसी श्रद्धा के प्रसार के साथ ही लीनता का प्रथम आत्मानुभव होता है। लीनता का पुरुषार्थ अथवा इसमें वृद्धि यह सब पर्याय के कार्य हैं। मेरापना, मेरा अस्तित्वपना अथवा व्यापकपना तो केवल त्रिकाली ज्ञानघन अखण्ड चैतन्य में है-इस दृष्टि में पर्याय का पुरुषार्थ सहज स्वभाव है। पर्याय अपेक्षा पुरुषार्थ हुआ, वृद्धि हुई, उसे पुरुषार्थ किया अथवा वृद्धि करी, ऐसा कहते हैं। यथार्थ में तो उक्त अस्तित्वपने की अखण्ड दृष्टि के बलपर पर्यायों का क्रम सहज ही अखण्ड की ओर बढ़ता रहता है। पुरुषार्थ आदि की इन पर्यायों में कोई उलटफेर (अधिक व कम पुरुषार्थ आदि का) करना नहीं पड़ता; कारण कि पर्याय में तो मेरा-दृष्टि के विषय का-अस्तित्व ही नहीं है कि ‘मैं’ उसमें कुछ कर सकूँ! मेरा अस्तित्व तो त्रिकालीपन में है। आशा है मेरा दृष्टिकोण मैं व्यक्त कर सका हूँ।...

धर्मस्नेही निहालचन्द्र सोगानी

ट्रस्ट के इस स्वानुभूतिप्रकाश के हिन्दी अंक (जुलाई-२०१८) का शुल्क एक मुमुक्षु, भावनगर के नाम से साभार प्राप्त हुआ है। जिस कारण से यह अंक सभी पाठकों को भेजा जा रहा है।

## पूज्य बहिनश्री की वक्तव्य



**प्रश्न :-** आगमका अभ्यास होता है?

**समाधान :-** आगमका अभ्यास भले हो। बीचमें सब कुछ आता है, परंतु उसमें इतना ही जानना और इतना ही अभ्यास होना चाहिये अथवा आगमका विशेष अभ्यास हो तभी समझमें आये-ऐसा नहीं है। आगममें क्या कहना है?— इसप्रकार आगमका-गुरुका आशय समझे तब भी अनुभव हो सकता है। आशय समझनेमें द्रव्य-गुण-पर्याय, स्व-पर भेदज्ञानका स्वरूप आदि समस्त ज्ञानका समावेश हो जाता है। उसमें संक्षेपसे या विस्तारसे समस्त ज्ञान आ जाता है।

(स्वानुभूतिदर्शन-६४४)



**प्रश्न :-** भगवानके समवसरणमें जो असंख्यात प्राणी ज्ञान प्राप्त करते हैं, वे भगवानके कथनका मूलभूत हेतु समझ जाते होंगे?

**समाधान :-** वे भगवानका आशय समझ जाते हैं। भगवानके समवसरणमें अनेक जीव तुरत समझ जाते हैं, किन्हींको समझनेमें देर भी लगती है। समवसरणमें भगवानकी दिव्यध्वनि छूट रही हो उस समय अनेक जीव तो क्षणमें सम्यग्दर्शन और मुनिपना आदि झट प्राप्त कर लेते हैं, जबकि अनेक जीवों को देर भी लगती है। भगवानकी वाणीका निमित्त इतना प्रबल है कि वह उपादान तैयार होनेका एकदम कारण बनती है। परंतु जब स्वयं तैयार हो तब बनती है। (अपना उपादान तैयार हो तब भगवानकी वाणी निमित्त होती है।)

(स्वानुभूतिदर्शन-६४५)



**प्रश्न :-** कोई योग्यतावान जीव हो वह आशय ग्रहण कर सकता है, परंतु द्रव्य-गुण-पर्यायका स्वरूप न जाने तो वह ज्ञायकको लक्ष्यमें लेकर-अंतर्मुख होकर-अपना कार्य कर सके?

**समाधान :-** तिर्यचको अपने द्रव्यस्वभावका ग्रहण हो जाता है, अस्तित्वका ग्रहण हो जाता है। 'मेरा अस्तित्व अनंत शक्तिसे परिपूर्ण है' ऐसा उसे अंतरसे आ जाता है। उसे गुण या पर्याय शब्दका ज्ञान नहीं है, परंतु 'मैं एक चैतन्यद्रव्य हूँ, मेरा अस्तित्व सबसे भिन्न है; विभाव स्वभाव मेरा नहीं है, विकल्प उठें वह मैं नहीं हूँ-मेरा स्वरूप नहीं है' ऐसा आशय समझ जाता है और अपने स्वभावको ग्रहण कर लेता है कि 'ज्ञाता सो मैं।' मैं ज्ञाता कैसा हूँ?—मैं केवल ज्ञाता हूँ ऐसा नहीं, परंतु अनंततासे भरपूर ऐसा ज्ञायक हूँ-ऐसा आशय ग्रहण हो जाता है। अनंतता और अचिंत्यतासे भरपूर ऐसा मैं ज्ञायक हूँ-ऐसा स्वीकार करनेसे उसमें अनंतगुणोंका समावेश हो जाता है। तिर्यचको परिणति आदि शब्द नहीं आते, परंतु ज्ञायककी गंभीरता ग्रहण करता है उसकी गहराईमें सबका समावेश हो जाता है। अस्तित्व, गुण, पर्याय आदि नाम नहीं आते, परंतु अंतरमें अपना अस्तित्व ग्रहण करता है, स्वभावकी पहिचान करता है उसमें सब आ जाता है। 'यह शरीर सो मैं नहीं हूँ, अंतरमें जो खाने-पीनेके विकल्प आते हैं वह भी मेरा स्वरूप नहीं है, उनसे मैं भिन्न हूँ', ऐसे अपने अस्तित्वको जानकर, भेदज्ञान करके तिर्यत भी

सम्यग्दर्शन प्राप्त करता है। 'मैं आश्चर्यकारी वस्तु हूँ, अनंत गंभीरतावान अस्तित्व हूँ'-ऐसे अपनेको ग्रहण करता है उसमें गुण-पर्याय आदि सबके ज्ञानका समावेश हो जाता है। (स्वानुभूतिदर्शन-६४६)



**प्रश्न :-** तिर्यचको अपने अस्तित्वकी इतनी महिमा आती है?

**समाधान :-** अपने ज्ञायकके अस्तित्वको स्वयं महिमा द्वारा ग्रहण करता है कि मैं यह ज्ञायक कोई निराला ही हूँ। मैं अनंत सामर्थ्यसे परिपूर्ण शक्तिवान पदार्थ हूँ। यह तुच्छ विकल्प मेरा स्वभाव नहीं है। और उसके अंतरमें द्रव्य-गुण-पर्यायके स्वरूपके ज्ञानका समावेश होता है। उसे न्याय, तर्क या युक्तियाँ नहीं आती, परंतु अस्तित्वका ग्रहण करता है उसमें सब आ जाता है। 'मैं ज्ञायक ध्रुव, कूटस्थ हूँ, परिवर्तनशील नहीं हूँ' ऐसा कुछ शब्दोंमें भले-ही नहीं आता, परंतु 'मैं महिमावान ज्ञायक हूँ और अपने अस्तित्वको धारण करनेवाला, अपने स्वरूपमें रहनेवाला तथा बाहर नहीं जानेवाला ऐसा मेरा स्वभाव है'-ऐसा उसे ग्रहण हो जाता है। उसे नाम नहीं आते, परंतु आत्माको ग्रहण करके उसीमें स्थिर रहूँ तो यह सब छूट जाय-ऐसे सब भाव ग्रहण कर लेता है। नवतत्त्वोंके नाम नहीं आते, परंतु 'मैं आत्मा हूँ और यह रागादि विभाव हैं तथा किसी प्रकारके विभाव परिणाम मेरा स्वभाव नहीं है'- इसप्रकार आत्माको ग्रहण करके अपनेमें एकाग्र होनेका प्रयत्न उसके होता है और उसमें सब ज्ञान आ जाता है। पुण्य-पाप, जीव-अजीवादि सबके ज्ञानका समावेश हो जाता है। (स्वानुभूतिदर्शन-६४७)



**प्रश्न :-** 'जिस ज्ञानके साथ आनंद न आये वह ज्ञान नहीं अज्ञान है'; ऐसा 'वचनामृत'में आथा है; तो उसका विशेष स्पष्टीकरण करनेकी कृपा करें।

**समाधान :-** ज्ञानके साथ आनंद नहीं है तो वह यथार्थ ज्ञान ही नहीं है। जिसे सम्यग्दर्शन हो, स्वानुभूति हो उसे ज्ञानके साथ आनंद आता ही है; यदि आनंद न आये तो ज्ञान सम्यक् रूपसे परिणमित ही नहीं हुआ है, मात्र लूखा ज्ञान है। यदि ज्ञानके साथ आनंदकी परिणति प्रगट नहीं हुई तो वह ज्ञान नहीं है, अज्ञान है; और वह (विभावसे) पृथक् नहीं हुआ है। भेदज्ञान होकर अंतरमें स्वानुभूति हो तो उस ज्ञानके साथ आनंद आये बिना नहीं रहता। ज्यों-ज्यों आस्रवोंसे निवृत्त होता जाय त्यों-त्यों ज्ञानकी दशामें वृद्धि होती जाती है और ज्यों-ज्यों ज्ञानदशामें वृद्धि हो त्यों-त्यों आस्रवोंसे निवृत्त होता जाता है। स्वानुभूति प्रगट होकर ज्ञानदशा प्रगट हो उसके साथ आनंद होना ही चाहिये; यदि आनंद नहीं है तो वह ज्ञानदशा यथार्थ नहीं है। ज्ञान पृथक् होकर-न्यारा होकर भेदज्ञानयुक्त नहीं है तो सम्यक्ज्ञान ही नहीं है। वह विचार करता हो वह जुदी बात है, परंतु यह सम्यक् रूपसे परिणमित ज्ञान नहीं है।

(स्वानुभूतिदर्शन-६४८)



**प्रश्न :-** तत्त्वके विचार दिन-रात करता हो, परंतु भेदाभ्यास न करे, तब भी अनुभव हो सकता है?

**समाधान :-** तत्त्वके विचार करता रहे, परंतु जबतक परिणतिमें रागादिसे एकत्व है और भेदज्ञानका अभ्यास नहीं है तबतक निर्विकल्प अनुभूति प्रगट नहीं होती। भेदज्ञानका अभ्यास करे तो निर्विकल्प अनुभूति होती है। किसीको अधिक समय लगे और किसीको थोड़ा समय लगे, परंतु भेदज्ञानका अभ्यास किये बिना-द्रव्यपर दृष्टि दिये बिना-निर्विकल्प अनुभूति नहीं होती। (स्वानुभूतिदर्शन-६४९)



ऐसी ईश्वरेच्छा नहीं है। इसलिये हम आपसे अभी कुछ कहना नहीं चाहते। परन्तु योग्यता आये और जीव यथायोग्य मुमुक्षुता प्राप्त करे इसके लिये प्रयत्न करें।” और इसके लिये उन्होंने अनेक प्रकारसे संक्षेपमें अपूर्व उपायोंका उपदेश दिया था। अभी उनकी इच्छा अप्रगट ही रहनेकी है, इसलिये परमार्थके सम्बन्धमें वे प्रायः मौन ही रहते हैं। हम पर इतनी अनुकंपा हुई कि उन्होंने इस मौनको विस्मृत किया था और उन्हीं सत्पुरुषने आपका समागम करनेकी हमारी इच्छाको जन्म दिया था, नहीं तो हम आपके समागमका लाभ कहाँसे पा सकते? आपके गुणोंकी परीक्षा कहाँसे होती? ऐसी आप अपनी अभिलाषा बताना कि हमें आपसे किसी प्रकारसे बोध प्राप्त हो और हमें मार्गकी प्राप्ति हो तो इसमें वे ज्ञानावतार प्रसन्न ही हैं। हमने उनके शिष्य होनेकी इच्छा रखी थी। तथापि उन्होंने बताया था-“अभी प्रगटरूपसे मार्ग कहनेकी हमें ईश्वराज्ञा नहीं है, तो फिर आप चाह जिस सत्संगमें योग्यता या अनुभव प्राप्त करें इसमें हमें संतोष ही है।” आपके लिये भी उनका ऐसा ही अभिप्राय समझें कि हम आपके शिष्यके तौर पर प्रवृत्ति करें तो भी आप मेरे ही शिष्य हैं ऐसा उन्होंने कहा है। आपके प्रति उन्होंने परमार्थयुक्त प्रेमभाव हमें बताया था। यद्यपि उन्हें किसीसे भेदभाव नहीं है, तथापि आपके प्रति स्नेहभाव किसी पूर्वके कारण से बताया मालूम होता है। मुक्तात्मा होनेसे वस्तुतः उनका नाम, धाम, ग्राम कुछ भी नहीं है; तथापि व्यवहारसे वैसा है। फिर भी उन्होंने यह सब अप्रगट रखनेकी हमें आज्ञा की है। आपसे वे अप्रगटरूपसे व्यवहार करते हैं। तथापि आप उनके पास प्रगट हैं। अर्थात् आपको भी अभी तक उन्होंने प्रगट समागम, नाम, धामके बारेमें कुछ भी कहनेके लिये हमें प्रेरित नहीं किया है और ईश्वरेच्छा होगी तो थोड़े समयमें आपको उनका समागम होगा ऐसा हम समझते हैं।

इस प्रकार प्रसंगानुसार बातचीत करना। किसी भी प्रकारसे नाम, धाम और ग्राम प्रगट करना ही नहीं और उपर्युक्त बात आपको अपने हृदयमें समझनेकी है। इसपरसे उस प्रसंगमें जो योग्य लगे वह बात करना। उसका भावार्थ न जाना चाहिये।

‘ज्ञानावतार’ सम्बन्धी ज्यों ज्यों उनकी इच्छा जागृत हो त्यों त्यों बातचीत करना। वे ज्ञानावतारका समागम चाहें इस प्रकारसे बातचीत करें। परन्तु ‘ज्ञानावतार’की प्रशंसा करते हुए उनका अविनय न हो जाये यह ध्यान रखे। तथा ‘ज्ञानावतार’की अनन्य भक्ति भी ध्यानमें रखे।

जब मनमेलका योग लगे तब बताइये कि हम उनके शिष्य हैं जैसे आपके भी शिष्य ही हैं। हमें किसी तरहसे मार्गकी प्राप्ति हो ऐसा बतायें इत्यादि बातचीत कीजिये। और हम कौनसे शास्त्र पढ़ें? क्या श्रद्धा रखें? कैसे प्रवृत्ति करें? योग्य लगे तो यह सब बताइयें। कृपया आपका हमारेसे भेदभाव न हो।

उनका सिद्धांत भाग पूछिये। इत्यादि जान लेनेका प्रसंग बन जाये तो भी उन्हें बताइये कि हमने जिन ज्ञानावतार पुरुषको बताया है वे और आप हमारे लिये एक ही हैं। क्योंकि ऐसी बुद्धि रखनेकी उन ज्ञानावतारकी हमें आज्ञा है। मात्र अभी उनकी अप्रगट रहनेकी इच्छा होनेसे हमने उनकी इच्छाका अनुसरण किया है। विशेष क्या लिखें? हरीच्छा जो होगी वह सुखदायक ही होगी।

एकाध दिन रुकिये। अधिक नहीं, फिरसे मिलिये।

मिलनेकी हाँ कहिये। हरीच्छा सुखदायक है।

ज्ञानावतार संबंधी वे पहले बात कहें तो इस पत्रमें बतायी हुई बातको विशेषतः दृढ़ कीजिये।

भावार्थ ध्यानमें रखिये। इसके अनुसार चाहे जिस प्रसंगमें इसमेंसे कोई भी बात उनसे करनेकी आपको स्वतंत्रता है। उनमें ज्ञानावतारके लिये अधिक प्रेम पैदा हो ऐसा प्रयत्न कीजिये। हरीच्छा सुखदायक है।



१६७

बंबई, कार्तिक सुदी १२, रवि, १९४७  
हरीच्छा सुखदायक ही है।

निर्विकल्प ज्ञान होनेके बाद जिस परमतत्त्वका दर्शन होता है,  
उस परम तत्त्वरूप सत्यका ध्यान करता हूँ।

त्रिभोवनका पत्र और अंबालालका पत्र प्राप्त हुआ है।

धर्मज जाकर सत्समागम करनेकी अनुमति है, परन्तु आप तीनके सिवाय और कोई न जाने ऐसा यदि हो सकता हो तो उस समागमके लिये प्रवृत्ति करें; नहीं तो नहीं। इस समागमको यदि प्रगटतामें आने देंगे तो हमारी इच्छानुसार नहीं हुआ, ऐसा समझे।

धर्मज जानेका प्रसंग लेकर यदि खम्भातसे निकलेंगे तो सम्भव है कि यह बात प्रगट हो जायेगी और आप कबीर आदि संप्रदायमें मानते हैं, ऐसी लोकचर्चा होगी अर्थात् आप उस कबीर संप्रदायके न होनेपर भी वैसे माने जायेंगे। इसलिये, कोई दूसरा प्रसंग लेकर निकलना और बीचमें धर्मजमें मिलाप करते आना। वहाँ भी अपने धर्म, कुल इत्यादि संबंधी अधिक परिचय नहीं देना। तथा उनसे पूर्ण प्रेमसे समागम करना, भेदभावसे नहीं, मायाभावसे नहीं, परन्तु सत्त्वेहभावसे करना। मलातज सम्बन्धी अभी समागम करनेका प्रयोजन नहीं है। खम्भातसे धर्मजकी ओर जानेसे पहले धर्मज एक पत्र लिखना; जिसमें विनयसहित जताना कि किसी ज्ञानावतार पुरुषकी अनुमति आपका सत्संग करनेके लिये हमें मिली है जिससे आपके दर्शनके लिये... तिथिको आयेंगे। हम आपका समागम करते हैं यह बात अभी किसी भी तरहसे अप्रगट रखना ऐसी उस ज्ञानावतार पुरुषने आपको और हमें सूचना दी है। इसलिये आप इसका पालन कृपया अवश्य करेंगे ही।

उनका समागम होनेपर एक बार नमस्कार करके विनयसे बैठना। थोड़ा समय बीतनेके बाद उनकी प्रवृत्ति-प्रेमभावका अनुसरण करके बातचीत करना। (एक साथ तीन व्यक्ति अथवा एकसे अधिक व्यक्ति न बोलें।) पहले यों कहें कि आप हमारे सम्बन्धमें निःसन्देह दृष्टि रखें। आपके दर्शनार्थ हम आये हैं। सो किसी भी तरहके दूसरे कारणसे नहीं, परन्तु मात्र सत्संगकी इच्छासे। इतना कहनेके बाद उन्हें बोलने देना। उसके थोड़े समय बाद आप बोलना। हमें किसी ज्ञानावतार पुरुषका समागम हुआ था। उनकी दशा अलौकिक देखकर हमें आश्चर्य हुआ था। हमारे जैन होनेपर भी उन्होंने निर्विसंवादरूपसे प्रवृत्ति करनेका उपदेश दिया था। 'सत्य एक है, दो प्रकारका नहीं है। और वह ज्ञानीके अनुग्रहके बिना प्राप्त नहीं होता। इसलिये मतमतांतरका त्याग करके ज्ञानीकी आज्ञामें अथवा सत्संगमें प्रवृत्ति करना। जैसे जीवका बंधन निवृत्त हो वैसे करना योग्य है। और इसके लिये हमारे ऊपर कहे हुए साधन हैं।' इत्यादि प्रकारसे उन्होंने हमें उपदेश दिया था। और जैन आदि मतोंका आग्रह मिटाकर उनके आदेशानुसार प्रवृत्ति करनेकी हमारी अभिलाषा उत्पन्न हुई थी, और अब भी वैसी ही है कि मात्र सत्यका ही आग्रह रखना। मतमें मध्यस्थ रहना। वे अभी विद्यमान हैं। युवावस्थाके पहले भागमें है। अभी उनकी इच्छा अप्रगट रूपसे प्रवृत्ति करनेकी है। निःसंदेह स्वरूप ज्ञानावतार हैं और व्यवहारमें रहते हुए भी वीतराग हैं। उन कृपालुका समागम होनेके बाद हम विशेषतः निराग्रही रहते हैं। मतमतांतर संबंधी विवाद खड़ा नहीं होता। निष्कपटभावसे सत्यका आराधन करनेकी ही दृढ़ अभिलाषा है। उन ज्ञानावतार पुरुषने हमें बताया था-“हम अभी प्रगटरूपसे मार्ग बताये

(अनुसंधान पृष्ठ सं.१८ पर...)

